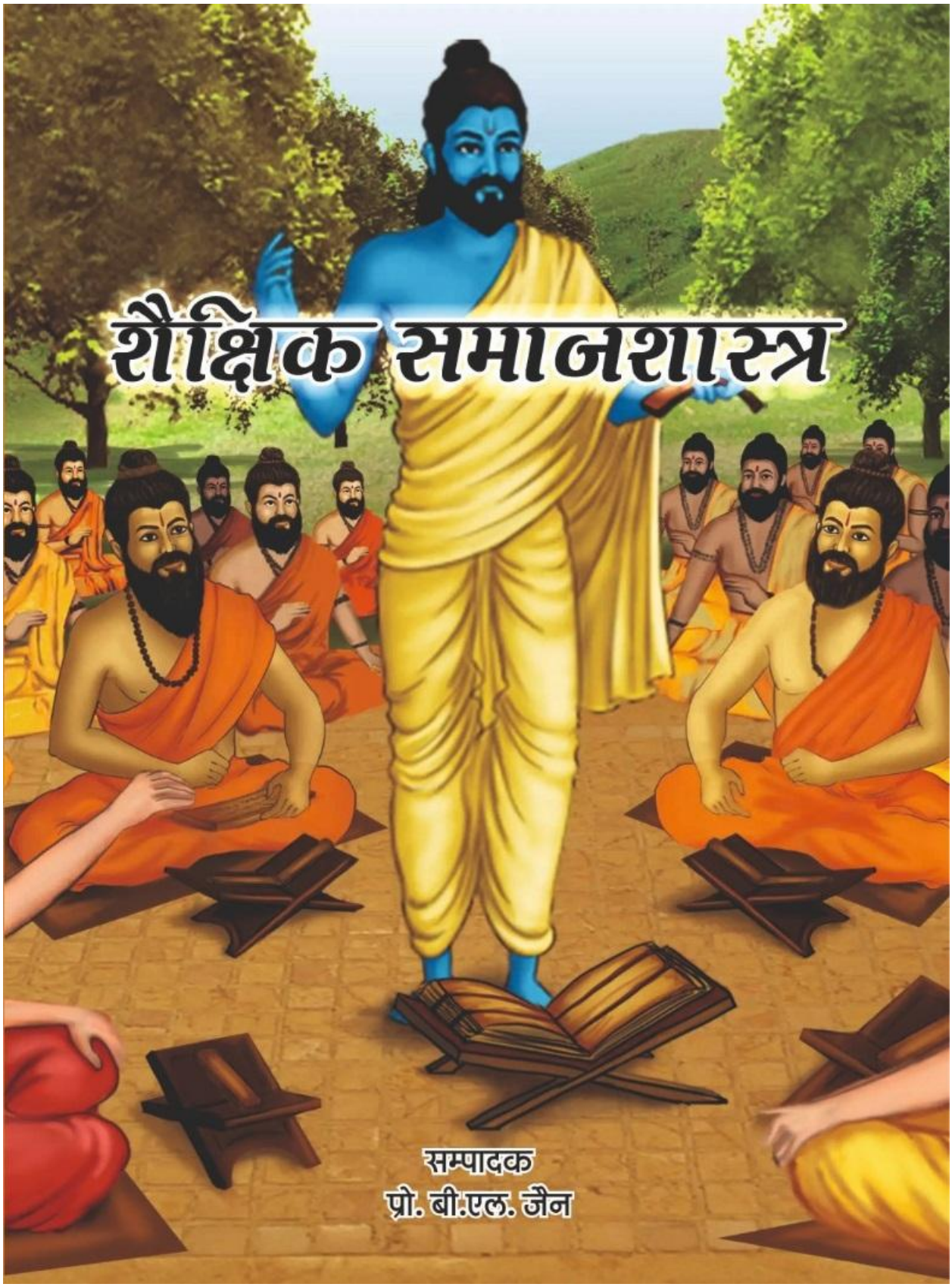

शैक्षिक समाजशास्त्र

सम्पादक
प्रो. बी.एल. जैन

अनुक्रमणिका

1.	शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ -प्रो. बी. एल. जैन	1-21
2.	भारत में परिवार और शिक्षा -डॉ. भाबाग्राही प्रधान	22-26
3.	शिक्षा-एक सामाजिक उप-व्यवस्था के रूप में -डॉ. आभा सिंह	27-38
4.	धर्म और शिक्षा -डॉ. अमिता जैन	39-53
5.	सामाजिक गतिशीलता -डॉ. अमिता जैन	54-65
6.	संस्कृति और शिक्षा -डॉ. गिरधारी लाल शर्मा	66-83
7.	समाजीकरण -डॉ. गिरधारी लाल शर्मा	84-98
8.	सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा -डॉ. सरोज राय	99-118
9.	शिक्षा और लोकतंत्र -डॉ. अदिति गौतम	119-138
10.	आधुनिकीकरण एवं शिक्षा -डॉ. गिरिराज भोजक	139-150
11.	सामाजिक स्तरण या स्तरीकरण -प्रो. बी. एल. जैन	151-171
12.	शिक्षा और राजनीति -डॉ. मनीष भटनागर	172-189
13.	शैक्षिक अवसरों की समानता -डॉ. मनीष भटनागर	190-218
14.	शिक्षा और समुदाय -डॉ. अदिति गौतम	219-236

संस्कृति और शिक्षा

डॉ. गिरधारी लाल शर्मा

वर्तमान युग में संस्कृति शब्द से तात्पर्य के सम्बन्ध में विद्वान 'मुण्डे-मुण्डे मति भिन्नः' के अनुसार एकमत नहीं है। मानव तथा अन्य जीवनधारियों में भिन्नता का मूल आधार मानव की अपनी संस्कृति है। संस्कृति के कारण ही हम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, एक समूह से दूसरे समूह में, एक समाज से दूसरे समाज में भिन्नता पाते हैं। दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये किसी समाज के व्यक्ति जिन तरीकों को अपनाते हैं, जिन उपकरणों को अपनाते हैं उनके आधार पर तथा उन लोगों की भाषा धार्मिक आस्थाओं, परिवार, विवाह का स्वरूप, सम्बन्धों का स्वरूप, शिष्टाचार के मापदण्ड एवं विधियां अर्थात सामाजिक विरासत के आधार पर ही हम उनकी संस्कृति को पहचानते है तथा अन्य संस्कृतियों से उनका अन्तर करते है। संस्कृति अतीत की समृद्धशाली विरासत है, जिसने कि मनुष्यों को पशुओं से भिन्न सामाजिक प्राणी बनाये रखने एवं प्राकृतिक पर्यावरण पर विजय पाने में सहायता पहुंचाई है। इसने मानव समाज की रक्षा भी की है। राल्फ लिन्टन लिखते है कि "समाज को बनाने में जिन तीन तत्वों की आवश्यकता होती है उनमें प्राकृतिक वातावरण और मानव व्यक्तित्व की अपेक्षा सांस्कृतिक तत्त्व अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अर्थ एवं परिभाषा :

संस्कृति एक जटिल धारणा है जिसका कोई एक अर्थ नहीं है। जन सामान्य से लेकर विभिन्न विचारों तथा विभिन्न विद्वानों तक में

इसके अर्थों को लेकर मतवैभिन्य है। साधारण बोल-चाल में संस्कृति का अर्थ सुन्दर, परिष्कृत, रूचिकर, या कल्याणकारी व्यवहार या गुणों से लिया जाता है।

संस्कृति शब्द 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग तथा 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका मूल अर्थ है - साफ या परिष्कृत करना (मांजना)। यह शब्द अच्छी स्थिति अथवा सुधरी हुई स्थिति का बोध कराता है।

संस्कृति के लिए अंग्रेजी शब्द 'Culture' की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Cultra' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है- कर्षण, खेती, जुताई, संवर्धन, शिक्षण द्वारा सुधार, संस्कृति, शिष्टता एवं तहजीव।

संस्कृति शब्द 'संस्कृत' शब्द का वंशज है, जिसका अभिप्रायः शुद्ध करने या सुधारने से है। संस्कार मानव निर्मित व्यवहार की वे विधियां है जिनसे मनुष्य का समाज के प्रति जागरूक होने का प्रमाण मिलता है। संस्कारों को समाज से स्पष्ट स्वीकृति प्राप्त होती है, जो सांस्कृति गुणों के रूप में प्रकट होते हैं।

1. टायलर **(Tylor)** के अनुसार : ''संस्कृति वह जटिल समग्र है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएं, नीति, विधि, रीति-रिवाज, और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएं एवं आदतें सम्मिलित हैं।''
2. सदरलैण्ड व बुडवर्थ **(Sutherland and woodworth)** के अनुसार : ''संस्कृति में वह सब कुछ सम्मिलित है, जिसे एक पीढी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जा सकता है। किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी सामाजिक विरासत है।''
3. एम.जे. हरस्कोविट्स **(M.J. Herskovit)** के अनुसार : ''संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है।
4. लेण्डिस **Landis** के अनुसार : ''संस्कृति वह विश्व है, जिसमें कि एक व्यक्ति रहता है, जीवन यापन करता है

और जन्म से लेकर मृत्यु तक अपने अस्तित्व को बनाए रखता है।

5. व्हाइट **White** के अनुसार : ''संस्कृति एक प्रतीकात्मक, निरन्तर, संचयी और प्रगतिशील प्रक्रिया है।''

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज से पृथक नहीं रह सकता है। अपने समाज के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए वह उसे पूर्ण रूप से संगठित करता है और एक निश्चित व्यवस्था को विकसित एवं स्थापित करता है। इसी निश्चित एवं सम्पूर्ण व्यवस्था को ''संस्कृति'' कहते हैं। इसमें उस समाज के रीति-रिवाज, परम्पराएं, मशीनें, उपकरण, नैतिकता, कला, विज्ञान, धर्म, विश्वास, सामाजिक, संगठन, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था आदि सब कुछ आ जाते है। सारांश में, किसी भी समाज में रहने का ढंग संस्कृति है। संस्कृति में वह सब सम्मिलित है जो मानव ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में आज तक अर्जित किया है।

संस्कृति की प्रकृति/विशेषताएँ (Nature/ Characteristies of Culture):

संस्कृति की प्रकृति अथवा विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है -

1. मानव द्वारा निर्मित :

संस्कृति मनुष्य को शारीरिक अंगों के समान जन्म से प्राप्त नहीं हुई है। मनुष्य ने अपने प्रयासों से संस्कृति के प्रत्येक भाग का निर्माण किया है। उसने अपनी बौद्धिक प्रतिभाओं तथा शारीरिक क्षमताओं का उपयोग करते हुए, पारस्परिक सहयोग से एवं पर्यावरण में उपलब्ध साधनों की सहायता से अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार की वस्तुओं, व्यवहारों, प्रथाओं, परम्पराओं, भाषा, संगीत, कला, कानून आदि का निर्माण किया है। इसी अर्थ में मनुष्य संस्कृति का निर्माता है।

2. सीखे हुए गुण :

संस्कृति जन्मजात नहीं है। समाजीकरण के द्वारा सीखे हुए गुण, आदतें तथा विचार आदि की ही संस्कृति कहलाती है। मनुष्य में प्रतीकात्मक संचार की योग्यता होने के कारण वह सांस्कृतिक व्यवहार को ग्रहण कर लेता है।

3. आदर्शात्मक :

संस्कृति में व्यवहार के वे आदर्श प्रतिमान (Ideal Pattern) या आदर्श नियम Ideal Norms सम्मिलित हैं, जिनके अनुसार समाज के सदस्य आचरण करने की चेष्ठा करते हैं। इन आदर्श, नियमों तथा प्रतिमानों को समाज स्वीकार करता है।

4. संचारशील :

संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारित होती है। इसी गुण के कारण नयी पीढ़ी पिछली पीढ़ी के अनुभवों का लाभ उठाती है। इस प्रकार संस्कृति अर्द्धस्थायी हो जाती है तथा किसी व्यक्ति या समूह के रहने से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

5. वैयक्तिक नहीं वल्कि सामाजिक :

संस्कृति के संवर्धन तथा संचार में हर एक व्यक्ति कुछ न कुछ भाग लेता है, परन्तु संस्कृति वैयक्तिक न होकर सामाजिक है। उसमें समूह के सदस्यों की सामान्य अपेक्षाएँ (Expectations) शामिल होती हैं। समूह से बाहर रहकर व्यक्ति, संस्कृति की सृष्टि नहीं कर सकता।

6. मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति :

सांस्कृतिक तत्वों का निर्माण ही मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है। अतः कुछ प्रकार्यवादियों जैसे – मैलियोनोवस्की एवं रेडक्लिफ ब्राऊन ने स्पष्ट किया है कि संस्कृति मनुष्य की सात आवश्यकताओं अर्थात शरीर पोशाक, उत्पादक, शारीरिक आराम, सुरक्षा, गति, वृद्धि, और स्वाथ्य की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

अतः संस्कृति का प्रत्येक भाग किसी न किसी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, या अन्य किसी आवश्यकता की पूर्ति करता है।

7. जीवन पद्धिति है :

यदि हम लेण्डिस द्वारा दी गयी संस्कृति की परिभाषा पर ध्यान दें तो पाते हैं कि संस्कृति किसी स्थान के लोगों की जीवन पद्धिति अर्थात जीने का तरीका है। जीवन शैली में भिन्नता के कारण ही एक संस्कृति के लोग, दूसरी संस्कृति के लोगों से भिन्न दिखाई देते हैं।

8. अनुकूलन करने का गुण :

प्रत्येक संस्कृति समय, स्थान तथा परिस्थिति से अनूकूलन स्थापित करती है। यह इन कारकों के अनुसार बदल जाती है।

9. भौतिक तथा अभौतिक तत्वों से निर्मित :

संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक दो स्वरूप है। भौतिक संस्कृति वह है जो हम देख, सुन और अनुभव कर सकते हैं, जबकि अभौतिक संस्कृति वह है जो हमारे विचारों, विश्वासों तथा मान्यताओं में निहित है।

10. भिन्न भिन्न समाजों की संस्कृति भिन्न भिन्न :

प्रत्येक समाज की भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियां अलग-अलग होती है, अतः प्रत्येक समाज में अपनी एक विशिष्ट संस्कृति पाई जाती है।

संस्कृति के प्रकार :

ऑगवर्न ने संस्कृति दो प्रकार की मानी है - भौतिक संस्कृति तथा अभौतिक संस्कृति।

भौतिक संस्कृति : भौतिक संस्कृति के अन्दर वे सब वस्तुएं आती है, जिनका स्वरूप मूर्त है और जिनका निर्माण मनुष्य ने किया है। जैसे - रहने के मकान, घरों को सामान, विविध प्रकार के उपकरण,

औजार, हथियार, बर्तन, आवागमन के साधन इत्यादि।

अभौतिक संस्कृति : अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत वे सब बातें आती है, जिनका स्वरूप अमूर्त है, ओर जिनका विकास मनुष्यों के सामूहिक रूप से रहने से होता है, जैसे - धर्म, भाषा, कला, संगीत, साहित्य, रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, जनरीतियां, आचार-विचार, प्रथाएं, संस्कार, संस्थाएं आदि।

संस्कृति एवं सभ्यता **(Culture and Civilization)** :

प्रायः लोग संस्कृति तथा सभ्यता को समान अर्थ में प्रयुक्त कर देते है, परन्तु ऐसा नहीं है। सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन साधनों तथा सामाजिक व राजनैतिक संस्थाओं से समझा जाता है, जिसके द्वारा मानव जीवन का मार्ग सरल, सुलभ तथा स्वतंत्र बनता है। संस्कृति वह है जो मानव प्राणी को मनुष्य बनाती है, अतः संस्कृति को मानव समाज का सर्वश्रेष्ठ गुण माना जाता है। यह मानव की सर्वोत्तम उपलब्धि है। अतः यह कहा जा सकता है कि सम्यता मानव की वाह्य अभिरूचि का विकास एवं अभिव्यक्ति है, इसके विपरीत संस्कृति मानव की आंतरिक अभिरूचियों का विकास एवं अभिव्यक्ति मानी जाती है।

सम्यता तथा संस्कृति के अन्तर को हम निम्न सारणी से समझा सकते हैं-

सभ्यता	संस्कृति
यह वह वस्तु है, जो हमारे पास है।	यह वह गुण है जो हमारे अन्दर व्याप्त है।
इसका सम्बन्ध भौतिक पदार्थों से है।	इसका सम्बन्ध कला तथा वृद्धि से है।
हमारी सभ्यता वह है जिसका हम उपयोग करते हैं।	हमारी, संस्कृति वह है, जो हम है।

सभ्यता	संस्कृति
भोजन, वस्त्र, वाहन, मकान तथा अन्य पार्थिव भौतिक पदार्थ सम्यता के उपकरण है।	परन्तु भोजन करने तथा वस्त्र पहनने की कला, मोटर चलाने तथा मकान बनाने का कौशल संस्कृति है।
यह बाह्यय व्यवस्था तथा साधनों को निरूपित करती है।	यह हमारी आंतरिक प्रवृति को व्यक्त करती है।
यह उपयोगिता पर बल देती है।	यह मूल्यों पर बल देती है।
इसकी सामग्री नाशवान है।	इसकी सामग्री प्रवाहमान है।
इसका सम्बन्ध शरीर से है।	इसका सम्बन्ध आत्मा से है।

संस्कृति की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Culture)

प्रत्येक संस्कृति के कुछ कार्य होते हैं, जिनके कारण उसका महत्त्व आंका जाता है तथा उसकी जीवन में आवश्यकता अनुभव की जाती है। संस्कृति के कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित है –

1. संस्कृति सामाजिक व्यवहार करने की दिशा का निर्धारण करती है।
2. संस्कृति के द्वारा समाज और राष्ट्र परस्परिक प्रेम एवं एकता के सूत्र में बंधने में समर्थ होते है।
3. संस्कृति व्यक्ति को अनुकूलन करना सिखाती है। संस्कृति का पोषक व्यक्ति प्रकृति को अपने अनुकूल ढ़ालने का प्रयास करता है।
4. संस्कृति एक भाषा का विकास करके उसे राष्ट्रभाषा का स्वरूप प्रदान करती है। आज भारत में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है।
5. संस्कृति राष्ट्र में भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता का विकास करती है।

6. संस्कृति पुरानी पीढ़ी की सौंपी हुई धरोहर है, जिसे नई पीढी सुरक्षित रखने का प्रयास करती है। इस प्रकार संस्कृति नई पीढी के लोगों में अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धाभाव विकसित करती है।
7. संस्कृति, समाजीकरण की प्रक्रिया में सहायता करती है।
8. संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।
9. संस्कृति व्यक्ति को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने की कला सिखाती है।

संस्कृति तथा शिक्षा में सम्बन्ध :

शिक्षा तथा संस्कृति के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करते हुए 'ब्रामेल्ड' ने लिखा है – ''संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से निर्माण होता है और यही सामग्री शिक्षा को न केवल उसके स्वंय के उपकरण वस्त्र उसके अस्तित्व का कारण भी प्रदान करती है।'' इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृति के अभाव में शिक्षा निःसार और निस्प्रयोजन है। लेकिन साथ ही संस्कृति के सरंक्षण, संवर्धन या परिमार्जन तथा हस्तान्तरण में शिक्षा की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इस प्रकार शिक्षा तथा संस्कृति परस्पर सम्बन्धित है और दोनों एक दूसरे को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है।

शिक्षा पर संस्कृति का प्रभाव :

सांस्कृतिक विरासत का हस्तान्तरण एक पीढी से दूसरी पीढी में अनौपचारिक तथा औपचारिक शिक्षा (साधनों) के द्वारा होता रहता है। शिक्षा के इन दोनों रूपों – औपचारिक शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा पर संस्कृति का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पडता है जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

अनौपचारिक शिक्षा और संस्कृति :

परिवार (Family) : समाज की संस्कृति के अनुरूप ही परिवार में आदर्श, मूल्य, परम्पराएं, रीति-रिवाज, आदि अपनाए जाते हैं। बालक को संस्कृति की शिक्षा सर्वप्रथम परिवार में ही मिलती है। बालक के व्यक्तित्व निर्माण में माता-पिता, भाई-बहन तथा परिवार के अन्य सदस्यों के सांस्कृतिक व्यवहारों का बहुत अधिक महत्व है। बालक की प्रथम गुरू, उसकी माँ होती है। माँ बालक को पहले उचित-अनुचित का अन्तर करना सिखाती है, नैतिक मूल्यों एवं धार्मिक व्यवहार के प्रतिमानों को सिखाती है। परिवार में संस्कृति की शिक्षा कुछ तो अचेतन अनुकरण के द्वारा होती है और बहुत कुछ वस्यक सम्बन्धियों द्वारा दी गई प्रत्यक्ष शिक्षा के रूप में होती है।

धर्म (Religion) : धर्म से वालक के व्यक्तित्व में नैतिकता आती है। धर्म, संस्कृति का अंग है, अतः संस्कृति बालक को नैतिक बनाने के लिए उत्तरदायी होती है। शिक्षा भी वही कार्य करती है।

औपचारिक शिक्षा एवं संस्कृति :

औपचारिक शिक्षा का, संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज की जैसी संस्कृति होती है, उसी के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। दूसरे शब्दों में, शिक्षण की रूपरेखा का निर्माण समाज की संस्कृति के अनुसार होता है। शिक्षण के सभी अंग, जैसे - उद्देश्य, पाठ्यकम, अनुशासन आदि पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। जो निम्नलिखित है-

1. शिक्षा के उद्देश्यों पर संस्कृति का प्रभाव : शिक्षा के अर्थ एवं उद्देश्य समाज की संस्कृति अर्थात समाज के मूल्य, आदर्श, विश्वास, मान्यताएं, परम्पराएं, आवश्यकताओं, दार्शनिक विचारों आदि के आधार पर निर्मित होते हैं।
2. शिक्षा के पाठ्यकम पर संस्कृति का प्रभाव : शिक्षा के पाठ्यकम पर भी संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। चूंकि

पाठ्यक्रम, उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है अतः पाठ्यक्रम समाज की संस्कृति पर आधारित होता है। समाज के विचार, विश्वास, मूल्य आदि को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम का निर्माण होता है।

3. शिक्षण विधियों पर संस्कृति का प्रभाव : प्राचीनकाल में शिक्षक का स्थान प्रमुख तथा बालक का स्थान गौण माना जाता था। अनुकरण एवं रटने को महत्व दिया जाता था। शिक्षण विधि के रूप में व्याख्यान विधि का ही सामान्यतया प्रयोग किया जाता था। किन्तु वर्तमान शिक्षा में बालक की रूचि, योग्यता अभिक्षमता आदि का ध्यान रखकर नवीन शिक्षण विधियों जैसे-प्रायोजन विधि, समस्या समाधान विधि, आगमन- निगमन विधि, अभिक्रमित अनुदेशन विधि आदि का प्रयोग किया जाता हैं स्पष्ट है समाज की संस्कृति के अनुसार शिक्षण विधियों में परिवर्तन होता है।

4. अनुशासन पर संस्कृति का प्रभाव : समाज के विचार, रहन-सहन, फैशन, मूल्य, भौतिक सम्पन्नता आदि का अनुशासन पर प्रभाव पड़ता है। दूसरें शब्दों में अनुशासन पर समाज की संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। आज दमनात्मक अनुशासन के स्थान पर स्वानुशासन पर महत्व दिया जाता है।

5. शिक्षण तथा शिक्षार्थी पर संस्कृति का प्रभाव : अध्यापक, समाज की संस्कृति को अपनाकर चलता है। इस प्रकार वह स्वयं, संस्कृति का उदाहरण होता है। शिक्षक के विचारों का प्रभाव बालकों पर पड़ता है और बालक शिक्षक की संस्कृति हो अपना लेते है।

6. विद्यालय पर संस्कृति का प्रभाव : विद्यालय, समाज, का लघुरूप है। समाज की संस्कृति विद्यालय में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। अतः विद्यालय समाज की संस्कृति के केन्द्र होते है। विद्यालय के समस्त क्रियाकलाप समाज की संस्कृति के अनुरूप चलाए जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनौपचारिक शिक्षा तथा औपचारिक शिक्षा के विभिन्न अंगों पर संस्कृति का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा का संस्कृति पर प्रभाव (शिक्षा के सांस्कृतिक कार्य) :

जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके है, शिक्षा तथा संस्कृति एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार संस्कृति, शिक्षा के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करती है, उसी प्रकार शिक्षा भी संस्कृति को प्रभावित करती है, जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. संस्कृति की निरन्तरता बनाए रखना (To Maintoin continuity of Culture) : संस्कृति किसी भी जाति के इतिहास का विशुद्ध सार है। हुंमायू कबीर ने लिखा है ''सांस्कृतिक परम्परा की निरन्तरता एक जाति के जीवित रहने की आवश्यक शर्त है।'' अतः सांस्कृतिक परम्परा की निरन्तरता बनाये रखना आवश्यक है।

   शिक्षा जाति की संस्कृति या सांस्कृतिक परम्पराओं की निरन्तरता में महान् योग देती है। आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका की आदिम जातियों की सांस्कृतिक परम्परा केवल इसलिए नष्ट हो गई, क्योंकि उनमें शिक्षा का पूर्ण अभाव था। समाज में विद्यालय संस्कृति को बनाऐ रखने का कार्य करते हैं। इस सम्बन्ध में स्पेन्स रिपोर्ट (Spens Report) में लिखा गया है। ''विद्यालय वह साधन प्रदान करते हैं, जिनके द्वारा राष्ट्र का जीवन अखण्ड रूप से पीढ़ी

दर पीढ़ी चलता रहता है।''

2. संस्कृति के हस्तांतरण में सहायक (To help in transmission of Culture) : व्यक्ति, समाज के सदस्य के रूप में संस्कृति को सीखता है और उसे अगली पीढ़ी को हस्तांतरित करता है। इस कार्य में शिक्षा, संस्कृति का सर्वाधिक सहयोग करती है। वस्तुतः अध्यापक द्वारा शिक्षा को संस्कृति हस्तांतरित करने का कार्य सौपां गया है। ओटवे का कथन है – ''शिक्षा का एक कार्य –समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को उसके तरूण और समर्थ सदस्यों को हस्तांतरित करना है।

3. संस्कृति का संरक्षण करना (To Preserve Culture) : शिक्षा संस्कृति का हस्तान्तरण ही नहीं करती, वरन उसका संरक्षण भी करती है। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहता है। यह कार्य शिक्षा द्वारा पूर्ण होता है।

4. संस्कृति के परिवर्तन में सहायता (Help in the change of Culture) : बालक जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है, वैसे–वैसे अपनी संस्कृति के रीति–रिवाजों, नियमों आदि को सीखता जाता है। वह इन वातों को अपने माता–पिता, परिवार के लोगों, समाज के व्यक्तियों तथा विद्यालय के अध्यापकों से सीखता है। फलस्वरूप, उसके व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन होता चला जाता है। जब कभी अध्यापक एक निश्चित योजना बनाकर या किसी विशेष प्रकार की व्यवस्था करके बालकों को उसकी संस्कृति का ज्ञान देता है, या उनक व्यवहार को निर्देशित करता है, तभी शिक्षा का कार्य दृष्टिगोचर होता है।

5. संस्कृति का विकास (To develp Culture) : शिक्षा संस्कृति को सुरक्षित ही नहीं रखती वरन उसका विकास भी करती है। यदि ऐसा न हो तो व्यक्ति व समाज प्रगतिहीन हो जाए। अतः शिक्षा उसका विकास भी करती है। शिक्षा संस्कृति के तत्वों, जैसे-भाषा, कला, साहित्य, संगीत आदि का ज्ञान देती है और इनका ज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति इनके विकास में योग देता है।

6. संस्कृति का परिमार्जन (To Improve the Culture) : शिक्षा, संस्कृति में समाये हुए अन्धविश्वास, बुरे विचार, बुरी प्रवृत्तियों, कुरीतियों आदि को दूर करके संस्कृति का परिमार्जन करती है। और उसमें समयानुकूल परिवर्तन लाती है। विद्यालयों द्वारा यह परिवर्तन सरलतापूर्वक लाया जाता है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा संस्कृति का अंग है और व्यक्ति शिक्षा के विभिन्न साधनों (औपचारिक एवं अनौपचारिक) द्वारा समाज के सांस्कृतिक तत्वों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति शिक्षा द्वारा समाज की संस्कृति का संरक्षण, हस्तान्तरण एवं विकास भी करता है।

संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के लिए शिक्षा :

1. मूल प्रवृतियों का नियंत्रण एवं मार्गान्तरीकरण : प्रत्येक प्राणी जन्म से ही कुछ मूल प्रवृत्तियों को लेकर संसार में उत्पन्न होता है, जैसे यौन मूल प्रवृत्ति, आक्रामकता अथवा युयुत्सा जैसी मूल प्रवृत्तियां आदि। इन मूल प्रवृत्तियों के नियंत्रण एवं शोधन किये बिना सभ्य जीवन संभव नहीं है। मूल प्रवृत्तियों के नियंत्रण, मार्गान्तरीकरण और शोधन का यह कार्य शिक्षा के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। सामाजिक शिक्षा से बालक बालिकाएं मूल

प्रवृत्तियों पर नियंत्रण और उनका मार्गान्तरीकरण सीखते हैं। विद्यालय में और परिवार में तथा बाहर के व्यापक समाज में पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था, सामाजिक नियत्रंण के साधन और अनुशासन के नियमें से भी यह कार्य सम्पन्न किया जाता है।

2. अन्तर्सांस्कृतिक अवबोध बढाना : जिन देशों में अनेक सास्कृतिक समूह पाय जाते है, वहां शिक्षा अन्तर्सांस्कृतिक अवबोध बढाने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। इसमें विभिन्न संस्कृतियों के अनुयायियों को एक दूसरे को समझने में सहायता मिलती है तथा राष्ट्रीय एकता बढती है।

3. अवकाश के समय का सदुपयोग : शिक्षा का एक महत्वपूर्ण कार्य अवकाश के समय का सदुपयोग है। अवकाश के समय को शिक्षाप्रद कार्यों में लगाना स्वयं में महत्वपूर्ण है। शिक्षित व्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, विभिन्न प्रकार की कलाओं की साधना आदि के द्वारा अपने समय का अच्छा उपयोग कर पाते हैं।

4. चरित्र निर्माण : मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के चरित्र की नींव उसके जीवन के प्रथम कुछ वर्षों में ही पड जाती है। शैशवावस्था में बालक के मन पर आचार-व्यवहार के विशय में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे ही आगे चलकर उसके चरित्र के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। चरित्र निर्माण शिक्षा के माध्यम से होता है। यह शिक्षा अधिकतर अनौपचारिक होती है। दूसरे शब्दों में, बालक का चरित्र निर्माण उपदेशों से इतना अधिक नहीं होता जितना कि परिवार, विद्यालय, पड़ौस, समूह आदि में उसके सामने उपस्थित होने वाले उदाहरण के द्वारा होता है। बालक में आत्म सम्मान का स्थायीभाव उत्पन्न करना उसके माता-पिता

और शिक्षकों का कार्य है। एक बार इसके बन जाने पर फिर वह स्वयं आत्म विकास के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है।

5. व्यक्तित्व का विकास : व्यक्तित्व का विकास वैसे तो बहुत कुछ अनौपचारिक साधनों जैसे परिवार, पास-पड़ौस, काम करने की परिस्थितियां आदि के माध्यम से होता है, किन्तु शिक्षाशास्त्रीयों ने शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य व्यक्तित्व का विकास माना है। अस्तु विद्यालय में बालक को नाना प्रकार के कार्यों को करने का अवसर देकर, विभिन्न खेलों आदि के माध्यम से उसके व्यक्तित्व का विकास किया जाता है।

6. सामुदायिक भावना का विकास : शिक्षा का एक मुख्य कार्य बालक-बालिकाओं में सामुदायिक भावना का विकास है। यह सामुदायिक भावना ही उन्हें अपने संगी-साथियों के प्रति व्यवहार करने, दूसरों के लिए त्याग करने और जाति वर्ग आदि की सीमाओं से ऊपर उठकर देश प्रेम रखने का पाठ पढ़ाती है। सामुदायिक भावना का विकास परिवार, क्रीड़ा समूह और विद्यालय में स्वस्थ समुदायिक जीवन के अवसर होने पर निर्भर है। यह सामुदायिक भावना राष्ट्रीय एकता का मूलाधार है।

7. समाज सुधार को प्रोत्साहन : औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा मनुष्य में समीक्षात्मक दृष्टिकोंण उत्पन्न करती है और वह प्रत्येक बात को ज्यो का त्यों न मानकर उसकी समीक्षा करता है तथा उसमें यदि कोई दोष पाता है तो उसके रूप में परिवर्तन करने का प्रयास करता है। इस प्रकार शिक्षा, समाज सुधार आन्दोलन का मूलाधार रही है।

8. राष्ट्रीय भावना का विकास : मानव समाज के विकास के लिए विभिन्न राष्ट्र समूहों का सर्वांगीण विकास आवश्यक है और यह शिक्षा के समुचित प्रसार के बिना नहीं हो सकता है। राष्ट्रीय भावना के विकास से देशवासी राष्ट्र की प्रगति में सब प्रकार का योगदान देते हैं। विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के उत्सवों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा राष्ट्रीय पर्वों के आयोजनों के माध्यम से बालकों में राष्ट्रीय भावना का विकास किया जाता है।

9. राष्ट्रीय भाषा का विकास : यद्धपि किसी भी देश में अनेक भाषाओं को बोला जाना और विकसित होना राष्ट्रीय एकता में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं है किन्तु एक सामान्य राष्ट्रीय भाषा का विकास किये बिना राष्ट्रीय एकता स्थापित करना, काफी कठिन है क्योंकि भाषा ही संवेगों और विचारों की अभिव्यक्ति करने का माध्यम है। अस्तु, शिक्षा का एक उद्देष्य राष्ट्र भाषा का विकास करना है। भारत के संविधान में हिन्दी को राष्ट्र भाषा मान लिया गया है, किन्तु खेद का विषय है कि क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के साथ-साथ हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन कराने का कार्य पर्याप्त तेजी से नहीं हो रहा है। यदि राष्ट्र भाषा के विकास में पर्याप्त प्रगति नहीं की गई तो इससे राष्ट्र की एकता को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

10. भावात्मक एकता का विकास : वर्तमान समय में देश में क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद आदि संकीर्ण प्रवृत्तियों के कारण विघटनकारी शक्तियां कार्य कर रही है। देश को इस विघटन से बचाने के लिए नर-नारियों में भावात्मक एकता उत्पन्न करना आवश्यक है, जिससे लोग अपने को एक ही राष्ट्र के सदस्य मानें और राष्ट्रहित को

ध्यान में रखकर कार्य करें। भावात्मक एकता के विकास का यह कार्य शिक्षा के माध्यम से सम्पन्न हो सकता है।

11. सर्वधर्म समभाव : भारत एक लौकिक राज्य है। इसमें सब धर्मों का समान रूप से सम्मान किया जाता है और धर्म के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जाता। किन्तु संविधान में इस व्यवस्था के बावजूद साम्प्रदायिकता का विष सब कहीं फैला हुआ है और विशेष प्रयत्नों के बिना उसको दूर नही किया जा सकता। इसके लिए एक मुख्य उपाय शिक्षा व्यवस्था के माध्यम से बालक-बालिकाओं में सब धर्मों के प्रति सम्मान उत्पन्न करना है और किसी विशेष धर्म के प्रति दुराग्रह की भावना निकालना है।

12. नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण : राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समुचित विकास के लिए योग्य नेतृत्व की आवश्यकता होती है। यह कार्य शिक्षा के द्वारा किया जा सकता है। अस्तु, शिक्षा का एक मुख्य कार्य विभिन्न क्षेत्रों में नेताओं को तैयार करना और उन्हें उनके कार्य का उपयुक्त प्रशिक्षण देना है। विद्यालय में भिन्न भिन्न कार्यक्रमों में भाग लेकर विद्यार्थियों की भिन्न भिन्न प्रतिभाओं का विकास होता है। इससे उनमें भिन्न भिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व करने की योग्यता बढ़ती है।

13. कुशल कार्यकर्ताओं की पूर्ति : नेताओं के साथ-साथ प्रत्येक क्षेत्र में कुशल प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता होती है। कुशल कार्यकताओं की यह पूर्ति शिक्षा के द्वारा की जाती है। शिक्षा के दौरान ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कौन व्यक्ति किस क्षेत्र में कार्य करने की कुशलता प्राप्त कर सकता है और फिर उसको

उसी के अनुसार प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

14. कर्त्तव्यों की चेतना : किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए इसके सदस्यों में राश्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों की चेतना आवश्यक है। यह कार्य शिक्षा के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। विद्यालयों में शिक्षार्थियों को राष्ट्र के सदस्य होने के रूप में उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों से परिचित कराया जाता है, उनमें कर्त्तव्यों की चेतना उत्पन्न की जाती है और उन्हें यह बताया जाता है कि वे इन कर्त्तव्यों को किस प्रकार निभा सकते हैं। जनतंत्र में शिक्षा का यह कार्य विशेष रूप में महत्वपूर्ण है।

सहायक आचार्य,
शिक्षा विभाग,
जैन विश्वभारती संस्थान,
लाडनूँ (राजस्थान) 341306